इतिहास व रहस्य का संगम लेपाक्षी

लेपाक्षी मंदिर आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले के एक छोटे से गांव में है, जिसे लेपाक्षी गांव के नाम से ही जाना जाता है। इसके सबसे पास का शहर हिंदूपुर है। यह हिंदूपुर शहर से 15 किलोमीटर पूर्व में तथा बेंगलुरु के 120 किलोमीटर उत्तर में स्थित है। मंदिर को कुर्म सैला के विशाल पहाड़ों के बीच चट्टान को काटकर ग्रेनाइट के पत्थरों की सहायता से बनाया गया है। यह पहाड़ एक कछुए के आकार में हैं, इसलिए इन्हें कुर्म सैला/ कुर्मासेलम के नाम से जाना जाता हैं। संस्कृत भाषा में कछुए को कुर्म कहा जाता है।

अजय त्रिवेदी
उप निदेशक युवा कल्याण

कुर्म सैला की गोद में बसा मंदिर

लेपाक्षी मंदिर कुर्म सैला नामक पहाड़ियों के बीच स्थित है। ये पहाड़ कछुए के आकार के हैं, इसलिए इन्हें कुर्म सैला या कुर्मासेलम कहा जाता है। संस्कृत में 'कुर्म' का अर्थ कछुआ होता है। मंदिर का निर्माण इन विशाल चट्टानों को काटकर ग्रेनाइट पत्थरों से किया गया है। पहली दृष्टि में ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह केवल एक धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि शिल्प और स्थापत्य का जीवंत इतिहास है।

रामायण से जुड़ी अमर कथा

लेपाक्षी की पहचान रामायण काल की एक अत्यंत करुण और वीर गाथा से जुड़ी है। मान्यता है कि भगवान श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण और माता सीता के साथ वनवास के अंतिम चरण में यहां ठहरे थे। इसी दौरान रावण ने मारीच की सहायता से माता सीता का अपहरण किया। पुष्पक विमान से लंका ले जाते समय यह दृश्य जटायु ने देख लिया। जटायु ने रावण से आकाश में भीषण युद्ध किया, लेकिन अंततः रावण ने उसका एक पंख काट दिया। घायल जटायु राम नाम लेते हुए इसी भूमि पर गिर पड़े। जब श्रीराम माता सीता की खोज में यहां पहुंचे, तो उन्होंने जटायु को कराहते हुए पाया।

'ले-पाक्षी' से बना लेपाक्षी

श्रीराम ने जटायु का सिर अपनी गोद में रखा और बार-बार "ले पाक्षी, ले पाक्षी" कहते रहे, जिसका तेलुगु भाषा में अर्थ है- 'उठो पक्षी।' जटायु ने माता सीता के अपहरण की पूरी कथा सुनाई और श्रीराम की गोद में ही अपने प्राण त्याग दिए। श्रीराम ने पुत्रवत जटायु का अंतिम संस्कार किया। तभी से इस स्थान का नाम लेपाक्षी पड़ा और मंदिर लेपाक्षी मंदिर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

विश्व का विशाल एकाश्म शिवलिंग

लेपाक्षी मंदिर में स्थित स्वयंभू शिवलिंग को विश्व का सबसे बड़ा एकाश्म शिवलिंग माना जाता है। इसे एक ही चट्टान को काटकर बनाया गया है। इसके पीछे सात मुखों वाला विशाल शेषनाग विराजमान है, जो मंदिर को और भी दिव्य, भव्य और रहस्यमय बना देता है। लेपाक्षी की यात्रा केवल एक मंदिर दर्शन नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, रामायण की गाथा और प्राचीन स्थापत्य से साक्षात्कार है। यहां हर पत्थर, हर स्तंभ और हर कथा इतिहास और आस्था की कहानी कहती है। लेपाक्षी से लौटते समय मन में यही भाव रहता है कि कुछ स्थल केवल देखे नहीं जाते, वे भीतर तक उतर जाते हैं।

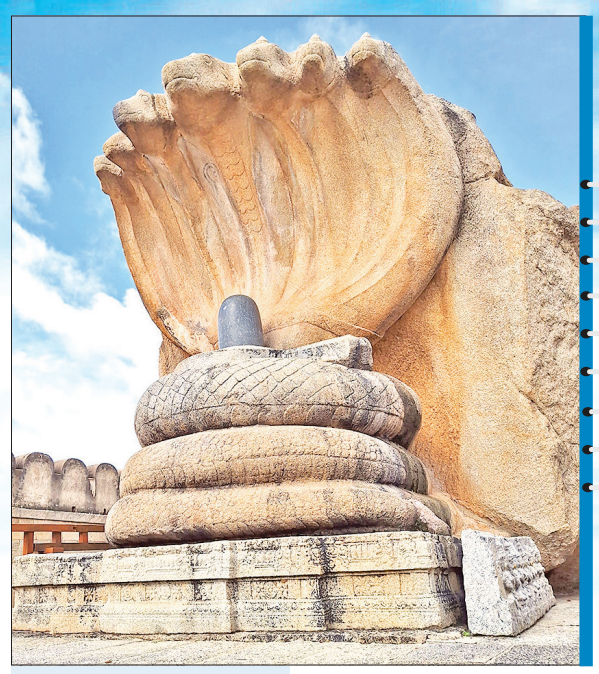

स्वयंभू शिवलिंग और प्राचीन मान्यताएं

लेपाक्षी मंदिर का इतिहास अत्यंत प्राचीन माना जाता है, जिसकी जड़ें सतयुग से जोड़ी जाती हैं। मान्यता है कि यहां स्थित स्वयंभू शिवलिंग की स्थापना महर्षि अगस्त्य ने की थी। रामायण काल में दो और शिवलिंग स्थापित किए गए—एक भगवान श्रीराम द्वारा और दूसरा भक्त हनुमान द्वारा। लंबे समय तक ये शिवलिंग खुले आकाश के नीचे रहे और बाद में मंदिर का निर्माण हुआ।

वीरभद्र और शक्ति की उपासना

दक्ष प्रजापति के यज्ञ और माता सती के आत्मदाह के बाद भगवान शिव के रूद्र रूप वीरभद्र के प्रकट होने की कथा भी इस मंदिर से जुड़ी है। मान्यता है कि महर्षि अगस्त्य ने भगवान शिव के इसी वीरभद्र रूप को समर्पित विशाल शिवलिंग और मंदिर का निर्माण यहां करवाया था, जिससे यह स्थान शक्ति और तपस्या का केंद्र बन गया।

माता सीता का चरणचिह्न

मंदिर परिसर में एक विशाल पैर की छाप दिखाई देती है, जिसे माता सीता का चरणचिह्न माना जाता है। लोक मान्यता के अनुसार जब रावण माता सीता को लंका ले जा रहा था और जटायु घायल होकर यहां गिरे थे, तब माता सीता ने श्रीराम को संदेश देने के लिए यह छाप छोड़ी थी। इस स्थान पर खड़े होकर रामायण की करुण कथा मानो सजीव हो उठती है।

विजयनगर काल का स्थापत्य वैभव

16 वीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्य के दौरान विरुपन्ना और विरन्ना नामक दो भाइयों ने इस विशाल मंदिर का निर्माण करवाया। मंदिर की स्थापत्य शैली, नक्काशी, स्तंभ और भित्ति-चित्र विजयनगर कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मंदिर निर्माण की तिथि को लेकर मतभेद हैं, लेकिन सामान्यतः इसका निर्माण 1520 से 1585 ईस्वी के बीच पूर्ण माना जाता है। कहा जाता है कि मंदिर की अद्भुत बनावट के पीछे कुछ रहस्यमयी शक्तियों का भी योगदान रहा है, क्योंकि इसकी संरचना आज भी इंजीनियरों और स्थापत्य विशेषज्ञों को चकित करती है।

नृत्य मंडप और झूलता हुआ स्तंभ

विजयनगर काल में मंदिर के भीतर भव्य नृत्य मंडप का निर्माण किया गया। मान्यता है कि भगवान शिव और माता पार्वती का विवाह इसी स्थान पर हुआ था। नृत्य मंडप कभी 70 स्तंभों पर टिका हुआ था। यहां का सबसे बड़ा रहस्य है हैंगिंग पिलर एक ऐसा स्तंभ, जो धरती से कुछ सेंटीमीटर ऊपर उठा हुआ है। 1902 ईसवी में एक अंग्रेज इंजीनियर हैमिल्टन ने इसका रहस्य जानने का प्रयास किया, जिससे एक स्तंभ ऊपर उठ गया, लेकिन टूटा नहीं। आज भी श्रद्धालु इसके नीचे से कपड़ा निकालने का प्रयास करते हैं और इसे मनोकामना पूर्ति से जोड़ते हैं।

कभी एशिया की सबसे बड़ी कंपनी थी केमू

उत्तराखंड के कुमाऊं में अंग्रेजों द्वारा मोटर मार्ग बनाने से पहले बैलगाड़ी ही यातायात का प्रमुख साधन हुआ करती थी। बैलगाड़ी वाले मार्ग प्रमुख रूप से तीन थे, जिन्हें ' कोर्ट रोड ' कहा जाता था। 1911 में नैनीताल तक सड़क का निर्माण हुआ, तो 1915 में हल्द्वानी से नैनीताल के मध्य यातायात शुरू हुआ। 1920 में मोटर यातायात को अल्मोड़ा से रानीखेत तक बढ़ाया गया। 1921 से 1938 तक कुमाऊं में 13 मोटर कंपनियां पंजीकृत थी, जिनमें मुख्य रूप से हिल मोटर ट्रांसपोर्ट, हरवंश ट्रांसपोर्ट , फौंसिका ट्रांसपोर्ट, नैनीताल मोटर ट्रांसपोर्ट, कुमाऊं मोटर सर्विस कंपनी आदि थी। इन तेरह कंपनियों को आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण हानि उठानी पड़ती थी। अधिकतर कंपनियां घाटे में थी। 1939 में घाटे के कारण नैनीताल मोटर ट्रांसपोर्ट कंपनी डूब गई।

दीपक नौगांई
शिक्षक

घाटे को देखते हुए इन सभी कंपनियों ने एकीकरण का निर्णय लिया और 1939 में कुमाऊं मोटर्स ऑनर्स यूनियन लिमिटेड (केमू) की स्थापना हुई। एक दौर में यह कंपनी एशिया की सबसे बड़ी निजी ट्रांसपोर्ट कंपनी मानी जाती थी।

केमू की स्थापना में ट्रांसपोर्ट कंपनियों के मालिकों के अलावा कई स्थानीय लोगों का भी सहयोग था, जिनमें गोविंद बल्लभ पंत प्रमुख थे। शुरुआत में केमू के महाप्रबंधक काठगोदाम निवासी एंग्लो इंडियन ईजेड फौंसिका थे। उन्होंने कंपनी को आगे बढ़ाने में काफी मेहनत की और नई बसों का बेड़ा जोड़कर कंपनी को एक नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया। वे काठगोदाम स्थित फौंसिका स्टेट में रहा करते थे, जहां कंपनी का ऑफिस भी था। बाद में उन्होंने अपनी जमीन स्कूल और चर्च के निर्माण हेतु दान में दे दी। देवीदत्त तिवारी केमू के पहले सचिव थे, जबकि हरवंश सिंह और लाला बालमुकुंद कंपनी के डॉयरेक्टर थे। बाद में यह कार्यालय काठगोदाम स्थित नरीमन भवन में स्थानांतरित कर दिया गया, जो आज भी वही से संचालित किया जा रहा है। यह भवन मुंबई से आए पासरी नरीमन द्वारा बनाया गया था। केमू कार्यालय की दो शाखाएं रामनगर और टनकपुर में भी खोली गईं। कभी केमू कंपनी में 250 के आसपास वाहन थे। हजारों लोगों को केमू ने रोजगार दिया, तो लोगों को कुमाऊं के दूरस्थ इलाकों तक भी पहुंचाया, लेकिन धीरे-धीरे चुनौतियां बढ़ती गईं। सरकारी परिवहन की बसों की संख्या बढ़ने और उन्हें मुनाफे वाले रास्तों में चलाने के कारण केमू की आय घटती गई और कंपनी घाटे में जाने लगी, लेकिन इन सबके बावजूद केमू का महत्व आज भी बरकरार है।

केमू को आज भी पहाड़ों की लाइफलाइन माना जाता है, जो कठिन और दुर्गम रास्तों में बसें चलाती हैं। खड़ी चढ़ाइयों, तंग सड़कों और कठिन मौसम का सामना करते हुए ये बसें लोगों को उन गांवों तक पहुंचाती हैं, जहां अभी भी रोडवेज या निजी परिवहन सेवा उपलब्ध नहीं है।

ज्वाइनिंग की जद्दोजहद और सीनियरिटी की दौड़

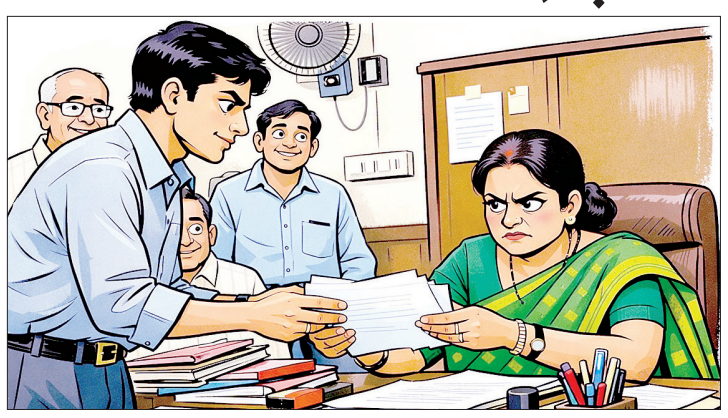

जॉब का पहला दिन

यूं तो नौकरी में लगभग 23 वर्षों का समय गुजर गया है, किंतु उस समय की कुछ धुंधली यादें आज भी जहन में हैं, जिन्हें आपसे साझा कर रहा हूं। सुबह-सुबह डाकिया महोदय घर आए और उन्होंने नियुक्ति आदेश की प्रति प्राप्त कराई, तो जैसे लगा कि दुनिया की सारी खुशियां मिल गईं। झट से हम भी सीधे सीएमओ कार्यालय गए और वहां से मेडिकल कराया तथा बगल में बीएनएसडी इंटर कालेज, कानपुर नगर गए, जहां से इंटर तक शिक्षा प्राप्त की थी, वहां के प्रधानाचार्य महोदय से चरित्र प्रमाण-पत्र प्राप्त किया। सारे काम इतनी तेज गति से किए गए कि 11:30 बजे प्रातः ज्वाइनिंग लेने अपर जिलाधिकारी (नगर) के कार्यालय पहुंचे, तो जानकारी दी गई कि वह नहीं हैं, तो अपर जिलाधिकारी (वि/रा) महोदय के कार्यालय पहुंचे और ज्वाइनिंग लेटर के साथ चिकित्सीय प्रमाण-पत्र व चरित्र प्रमाण-पत्र (जैसाकि नियुक्ति आदेश में अंकित था) प्रस्तुत किया। अपर जिलाधिकारी (वि/रा) महिला अधिकारी थीं, उन्होंने घूरते हुए मुझे देखा और कहा कि इतनी जल्दी कैसे करा लाए? उन्होंने प्रस्तुत चरित्र प्रमाण-पत्र मानने से इंकार किया कहा कि मैं इसको नहीं मानती। जिलाधिकारी कार्यालय में ही तैनात बनारसी तिवारी से मेरे पूर्व के गुरु-चेला के संबंध थे, तो उन्होंने मेरी मदद की और दो चरित्र प्रमाण-पत्र अन्य अधिकारियों से तत्काल बनवा दिए।

आधे घंटे के अंदर फिर मैं मैडम के कक्ष में पहुंच गया। मैडम फिर बोलीं मैं ये भी नहीं मानूंगी। मैडम के चैंबर में अन्य लोग भी बैठे थे, उनके सामने मैडम से थोड़ी सी बहस भी हो गई, क्योंकि मुझे ऐसा महसूस हो रहा था कि मैडम जानबूझकर मुझे ज्वाइन नहीं कराना चाह रही हैं। मैडम भी आगबबूला हो गईं। मैंने फिर कहा कि अब आप जिन अधिकारीगण को बता दें, मैं उनसे ही बनवाकर ले आता हूं। पब्लिक में से कुछ लोग मेरी ओर से बोले कि मैडम इस लड़के ने चार कैरेक्टर दे दिए हैं और कहां से लाएगा? मेरी कोशिश थी कि मेरी ज्वाइनिंग उसी दिन हो जाए ताकि सीनियरटी का फायदा मिल जाए। तब मैडम बोलीं अच्छा जाओ दो और बनवाकर ले आओ। अगर 4 बजे तक आ जाओगे तो ज्वाइनिंग दे दूंगी नहीं तो अगले दिन ही ज्वाइन करना।

नितिन प्रकाश गुप्ता
कानपुर

तिवारी जी ने पुनः मेरी मदद की और दो चरित्र प्रमाण-पत्र अपने निकटस्थ अधिकारीगण से बनवा दिए। मैं 3:00 बजे पुनः मैडम के सामने पेश हो गया और कहाकि आपके कहे अनुसार दो और बनवा लाया हूं। मैंडम ने फिर घूरते हुए मेरे ज्वानिंग लेटर पर अनुमति प्रदान कर दी। कुल मिलाकर पहला दिन सिर्फ ज्वाइनिंग की जद्दोजहद में ही निकल गया। ज्वाइनिंग के बाद ऑफिस के वरिष्ठ साथियों से मिला। बाद में ये जानकारी हुयी कि मैडम किसी और की ज्वाइनिंग पहले कराना चाहती थीं ताकि उसे सीनियरटी मिल सके, लेकिन मेरे सतत प्रयास से ऐसा हो न सका। खैर बाद में मैडम ने मेरी लगन और मेहनत को देखते हुए मुझे पूरा सपोर्ट किया और मुझे अपने लड़के की तरह मानने लगीं। इस तरह नौकरी का पहला दिन सिर्फ ज्वाइनिंग की जद्दोजहद में ही निकल गया।

लेखनः अभिव्यक्ति की सशक्त विधा

भाषा हमारे पूर्वजों की अर्जित सामूहिक संपत्ति है। भाषा की उत्पत्ति हमारे पूर्वजों ने इसलिए की थी कि हम अपने गोपनीय मनोभावों का जो अदृश्य है, अज्ञात है, उसको सामने वाले तक पहुंचाया जा सके और साकार या दृष्य रूप में प्रस्तुत या उपस्थित किया जा सके। संदेशों का संप्रेषण किसी भी समाज में भाषा की उपस्थिति का मुख्य कारण रहा है। आज यह जरूर कहा जा रहा है कि जिस भाषा को हमारे पूर्वजों ने गोपनीयता के प्रकाशन के लिए तैयार किया था, आज उसी भाषा से हम अपने मनोभावों के गोपन का कार्य कर रहे हैं। भाषा ने अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों लोकों को प्रकाशित कर रखा है। भाषा में व्यक्त किए जा रहे अनुभवों एवं संवेदनाओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित-संरक्षित करने हेतु लिपि का पूर्वजों ने संज्ञान किया और भाषा को लिपिबद्ध किया। लिपिबद्ध होने पर भाषा के अंतर्गत बोलचाल या बातचीत के अतिरिक्त ज्ञान और संवेदनाओं के विस्तार के लिए ज्ञान के दो रूपों शास्त्र एवं साहित्य की परिकल्पना करते हुए विभिन्न प्रकार के शास्त्रों और साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन कार्य प्रारंभ किया गया।

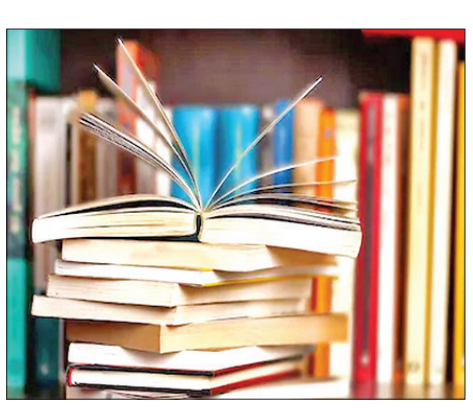

भाषा का घनत्व और संपादकीय

वेदांग के नाम पर छह शास्त्रों से हमारे अध्ययन की शुरुआत आज छह सौ विषयों तक पहुंच चुकी है। वहीं पर साहित्य में महाकाव्य, खंडकाव्य, तुकांत-अतुकांत कविताएं और गद्य के क्षेत्र में निबंध, नाटक, एकांकी, ललित निबंध, रेखा चित्र, रिपोर्ताज, फीचर, संस्मरण, डायरी, पत्र, आत्मकथा, जीवनी, ब्लॉग जैसी विधाएं सामने आई हैं और निरंतर विकसित हो रही हैं। साहित्य और शास्त्र का विभाजन शब्द की अर्थ प्रक्रिया पर निर्धारित की गई है। यदि शब्द से एक निश्चित अर्थ की प्राप्ति हो रही है और अर्थ विचलन नहीं है, तो उसे शास्त्र में प्रयुक्त किया गया और अर्थ की दृष्टि से इसे 'विचारित सुस्थ' कहा गया। शास्त्र में अभिधा अर्थ ही प्रथम और अंतिम है। जबकि साहित्य में अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, तात्पर्य जैसे अर्थों की परिकल्पना करते हुए, उसे 'अविचारित रमणीय' नाम दिया गया है। इस अविचारित रमणीय अर्थों वाली दुनिया, जिसे हम साहित्य कहते हैं, जो विभिन्न विधाओं में है। उसमें भाषा का लिखित रूप अपने सर्वोत्तम रूप में संपादकीय में देखा जा सकता है। अर्थ की दृष्टि से भाषा का घनत्व संपादकीय का प्राणतत्व है।

लेखन जगत की अनिवार्यता

पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन एवं पुस्तकों के संपादन के साथ ही 'संपादकीय' हमारे लेखन जगत की अनिवार्यता बन गई है। उदंत मार्तण्ड से लेकर अद्यतन दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक, षट्मासिक, वार्षिक जैसी अवधिवाली पत्र-पत्रिकाओं में संपादकीय एक विशिष्ट सामूहिक अभिव्यक्ति का माध्यम है। संपादकीय में किसी भी संस्था, संगठन, संघ से संबंधित विचारधारा को पारदर्शी तरीके से कम से कम शब्दों में रखने का विधान किया गया है। संपादकीय के द्वारा शासन-सत्ता की चुनौतियों का सामना करते हुए संपादक स्थानीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक समस्याओं पर अपने संस्थान के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का कार्य करता है। लगभग ज्ञान को प्रकाशित करने वाले प्रत्येक अनुशासन में पत्रिकाएं निकल रही हैं। साहित्य में समग्रता को समेटते हुए और विधापरक पत्रिकाओं की भी प्रगति देखी जा सकती है। स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई से लेकर आपातकाल तक संपादकों की दमदार संपादकीय देखी जा सकती है। आपातकालीन संपादकीय प्रयोगों की एक गौरवशाली शानदार श्रृंखला है। आज तक समस्याओं एवं चुनौतियों का जितना सामना संपादकीय के द्वारा किया गया है, उतना किसी अन्य विधा के द्वारा संभव नहीं हुआ है। गौरतलब है कि भाषा के इस महत्वपूर्ण उपक्रम को अभी तक विधा की मान्यता नहीं दी गई है। हिन्दी साहित्य के इतिहासों से संपादकीय विधा का इतिहास गायब है। जब विधा माना नहीं गया तो इतिहास , उद्भव- विकास लिखने की आवश्यकता भी नहीं रह गई। चर्चित साहित्यिक पत्रिका हंस में गौतम नवलखा ने कई वर्ष पूर्व संपादकीय को एक विधा के रूप में मान्यता देने के लिए एक लेख लिखा था। हंस के 'संपादकीय' गद्य की किसी विधा से ज्यादा चर्चित रहे हैं। आलोचना, पूर्वाग्रह या पहले की पत्रिकाओं के संपादकीय से साहित्य की नीति तय हो जाती थी।

आज भी बौद्धिक समाज और प्रतियोगी परीक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए संपादकीय कितनी महत्वपूर्ण हैं, यह बात हम सब जानते हैं। पादकीय गद्य की अप्रतिम, अद्वितीय, अनन्य विधा है। मां पाटेश्वरी विश्वविद्यालय के हिंदी साहित्य के पाठ्यक्रम में कुलपति महोदय की कुशल निर्देशन के द्वारा अकादमिक क्षेत्र में यह नवाचार संभव हो सका है। हिन्दी जगत के यशस्वी रचनाकार आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी द्वारा संपादित 'दस्तावेज' त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका का एक संपादकीय 'शब्द और कर्म' पाठ्यक्रम में लगाया गया। संपादकीय जगत के इतिहास में यह संपादकीय अद्भुत स्थान रखता है। संपादकीय का एक गौरवशाली इतिहास रहा है। संपादकीय के विभिन्न रूप विषय और समय गत पत्र-पत्रिकाओं में देखे जा सकते हैं। संपादकीय के तकनीकी पक्षों का अध्ययन अध्यापन होता रहा है, किंतु अब संपादकीय विधा के उद्भव और विकास पर भी विद्वानों का ध्यान गया है। अब इस विधा का भी समग्रता से इतिहास प्रस्तुत किया जाएगा।

-प्रो. शैलेंद्र नाथ मिश्र, बलरामपुर